आदिकवि-महर्षि-वाल्मीकि-द्वात्रिंशिका

डॉ. नारायणशास्त्रीकाङ्कर

अयि आदिकवि-वाल्मीकि, नाम्ना विख्यात मुनि-पुङ्गव!
नमो नमस्ते सततं, यशो-गगने दीव्यदुडुपाय।।1।।

हे आदि कवि वाल्मीकि के नाम से विख्यात मुनिराज! यशरूपी आकाश में चमकते हुए नक्षत्र! आपको सतत नमन है, नमन है।

त्वमेव सर्वप्रथममिट, प्रणीतवान् रामायणं महाकाव्यम्।
इदयस्त्यग्रे विरचित-समसत-वामकृतीन्नमुप जीव्यमेव।।2।।

आपने ही सबसे पहिले यहाँ रामायण महाकाव्य प्रणीत किया है। यह आगे रची गयी समस्त राम-कृतियों का उपजीव्य ही है।

त्वमसि करुणार्द्र-हृदयो, यः क्रौञ्च-वियोगाद् विलपन्ती क्रौञ्चीम्।
वीक्ष्य निसादाय शाप,-मदात् प्रतिष्ठां नात्तुं शाश्वतीः समाः।।3।।

आप करुणा से आर्द्र बने हृदय वाले हो, जिन्होंने क्रौंञ्च के वियोग से विलाप करती हुई क्रौन्ची को देखकर क्रौञ्च का वध करने वाले निषाद् को सदा-सदा के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं करने का शाप दे दिया था।

रामायण-निर्म्माणे, क्रौञ्च-वियोगोऽयमेव मुख्यो हेतुः।
करुणा-रस-प्लुतमिदं, कस्य न पाषाण-हृदयं विद्रावयति?।।4।।

रामायण का निर्माण करने में यही क्रौञ्च का वियोग मुख्य कारण बना। करुणा-रस से आप्लावित यह रामायण किसके पाषाण-हृदय को नहीं पिघला देता है?

एतद् रामायणं तु, सत्यमेवादर्श-गार्हस्थ्य-दर्पणः।
समस्तैरपि गृहस्थैः, स्वं रचं चरित्रं शिक्षितव्यभे तेन।।5।।

यह रामायण तो सचमुच ही आदर्श गार्हस्थ्य का एक दर्पण है। सभी गृहस्थियों को इससे अपने अपने आचरणीय चरित्र को सीखना चाहिये।

रामवद् वर्त्तितव्यं, न रावण वदित्युपदिशामि रामायणम्।
रामराज्यवत् स्वराज्य,-मपि सुराज्यं कर्त्तुं शिक्षयति तदिदम्।।6।।

राम की तरह वर्त्ताव करना चाहिये, रावण की तरह वर्त्ताव नहीं करना चाहिये। रामायण यह उपदेश देती है। स्वराज्य को भी रामराज्य की भाँति सुराज्य बनाने के लिये वह यह रामायण शिक्षा देती है।

परन्तु कुत्र हा! तदिद,–मनुसरन्ति सम्प्रति संसारे लोकाः?
सर्वत्र रावण–भूत,–नराः स्त्रीषु दुराचरन्ति घ्नन्ति च।।7।।

परन्तु हा! दुःख है, संसार में लोग अब कहाँ इस बात का अनुसरण करते हैं। वे तो सर्वत्र ही रावण बने हुए स्त्रियों पर दुराचार करते हैं और उनके मार देते हैं।

अद्य तु रावण–भीतः, श्रीरामोऽपि नावतरति भूतलेऽस्मिन्।
कथं स्त्रीणां सतीत्वं, सुरक्ष्येतेति चिन्ता मां हि बाधते।।8।।

आज तो इन रावणों से डरे हुए श्रीरामजी भी इस भूतल पर अवतार नहीं लेते हैं। स्त्रियों का सतीत्व कैसे सुरक्षित हो? यह चिन्त्य मुझको बाधित करती है।

माता–पित्रोः श्रद्धा, भ्रातृ–भ्रात्रोः स्नेहोऽत्र विलुप्त एव।
पति–पत्न्योः सौहार्दं, नहि दृश्यते क्वाप्युदाहरणीयं हा!।।9।।

माता–पिता में श्रद्धा, भाई–भाई में स्नेह यहाँ विलुप्त ही हो गया है। हा! दुःख है, पति–पत्नी में कहीं भी उदाहरणीय सौहार्द दिखायी नहीं देता है।

नानाविद्यातङ्कैस्तु, नहि कोऽपि सुखेन निद्रातुं शक्नोति।
अकाल–मृत्युः सदैव, सर्वेषामपि मूर्धनि हा! नरीनर्त्ति।।10।।

नाना प्रकार के आतङ्कों से तो कोई भी सुख से निद्रा नहीं ले सकता। हा! दुःख है, सभी के सिर पर सदा है। अकाल–मृत्यु नृत्य किया करती है।

नैला दैवी विपदा, किन्तु मनुष्योत्पादितामियां मन्ये।
विकृत–मनो–मनुष्याहि, नाना दुराचारान् प्रकुर्वतेऽनिशम्।।

यह दैवी विपदा नहीं है। किन्तु मैं इसे मनुष्यों से उत्पादित मानता हूँ। विकृत मन वाले नमुष्य ही निरन्तर नाना दुराचार करते हैं।

शासकाङ्कुशोऽस्ति नैषु, परमेश्वर–भीतास्तु नैते सन्ति।
समाजोऽपि निष्क्रियोऽत्र, दर्शं दर्शमिदं दोदूयेऽहम्।।12।।

इन पर शासन–कर्त्ताओं का अङ्कुश नहीं है। ये परमेश्वर से डरने वाले तो हैं ही नहीं। समाज भी इस विषय में निष्क्रिय बना हुआ है। मैं तो यह देख–देख कर बहुत ही दुःखी हो रहा हूँ।

मनःशोधनोपायो, वर्त्तते सर्वेभ्यः संस्कृत–शिक्षणम्।
शिक्षित–संस्कृताः पुनर्, न दुराचरन्ति कुत्रापि कदापि किमपि।।13।।

मन को शुद्ध करने का उपाय है सभी को संस्कृत सिखाना। संस्कृत सीखे हुए लोग फिर कहीं भी कभी कोई भी दुराचार नहीं करते हैं।

शिक्षित–संस्कृत–जनेषु, भवति स्व–कर्त्तव्य बोधः स्वतो हि।
भ्रष्टाचारेऽवितेन, प्रवर्त्तन्ते सदाचारिणः।।14।।

संस्कृत सीखे हुए लोगों में स्वतः ही अपने कर्त्तव्यों का बोध हो जाता है। सदाचारी बने हुए वे भ्रष्टाचार करने में भी प्रवृत्त नहीं होते हैं।

शिक्षित–संस्कृत–नृणां, स्वदेशे स्वस्वामिनि भवति भक्तिः।
ते तत् कुर्वन्ति नैव, यत् स्यात् तत् कीर्त्ति–कलङ्क–कृत्।।15।।

संस्कृत सीखे हुए मनुष्यों की अपने देश में और अपने स्वामी में भक्ति होती है। वे उस काम को नहीं करते हैं, जो उनकी कीर्त्ति को कलङ्कित करने वाला हो।

शिक्षित–संस्कृता जना, न भ्रष्टाचारिणो न चातङ्क–कृतः।
दृष्टाः श्रुता दण्डिता, वा कुत्रापि केनापि कदापि ते नहि।।16।।

संस्कृत सीखे हुए लोग न भ्रष्टाचारी होते हैं और न आतङ्ककारी। वे इन अपराधों के कारण किसी के भी द्वारा कहीं भी कभी भी दण्डित किये हुए नहीं देखे सुने गये हैं।

शिक्षित–संस्कृत–जना, न बलात्कारिणो न च देश–द्रोहिणः।
न चापि तस्करा न कार्य, चौरा वञ्चका वा भवन्ति कुत्रापि।।17।।

संस्कृत सीखे हुए व्यक्ति न बलात्कारी होते हैं और न देश–द्रोही। कहीं भी वे न तस्कर होते हैं, न कामचोर या वञ्चक।

सर्वाः प्रवृत्तयः सन्ति, स्वार्थ–मूलाः सदैव हि।
तासामुच्चाटने नूनं, क्षयं संस्कृत–शिक्षणम्।।19।।

मनुष्य की सभी प्रवृत्तियाँ सदा ही स्वार्थ के मूल वाली होती है। उन स्वार्थ–मूलक प्रवृत्तियों का उच्चाटन करने में संस्कृत की शिक्षा देना ही लाभकारी है।

सर्वे स्वार्थ–रता लोकाः, पर–पीडां न जानते।
संस्कृतज्ञास्तथा नैव, कश्चित् ते पीडयन्ति न।।19।।

स्वार्थ साधने में लगे रहने वाले सभी लोग दूसरों की पीड़ा को नहीं जानते। परन्तु संस्कृत जानने वाले लोग वैसे नहीं होते हैं। वे तो किसी को पीडित भी नहीं करते।

संस्कृत–वित् सद्वृत्तो, भवति स न कस्यैचन हानि–दाता।
आत्म–घाती स्वयं न सः, परघाती तु कथं भवेत्?।।20।।

संस्कृत जानने वाला सदाचारी होता है। वह किसी को हानि देने वाला नहीं होता। वह स्वयम् आत्मघाती नहीं है, पर–घाती तो वह कैसे होगा?

संस्कृत-शिक्षिता यत्र, स्त्रियः स्वकर्म-संरताः।
तत्र तत्-संन्ततिर्योग्या, सदाचार-परायणा।।21।।

जहाँ संस्कृत की शिक्षा पायी हुई स्त्रियाँ अपने कर्त्तव्य-कर्मों में सम्यक् लगी रहती हैं, वहाँ उनकी सन्तान भी योग्य और सदाचार-परायण होती हैं।

सर्वेभ्यो यदि दीयेत, संम्यक् संस्कृत-शिक्षणम्।
शारीरं मानसं स्वास्थ्यं, विकृतं स्यात् कदापि न।।22।।

सभी को यदि अच्छी तरह संस्कृत की शिक्षा दे दी जाये तो उनका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य कभी विकृत नहीं हो।

संस्कृत-शिक्षयाऽवश्यं, मनः पूतं प्रजायते।
मनसि पूततां प्राप्ते, भ्रष्टाचारो न जायते।।23।।

संस्कृत की शिक्षा देने-दिलाने से मन अवश्य ही, पवित्र हो जाता है। फिर मन के पवित्र हो जाने पर भ्रष्टाचार नहीं होता है।

संस्कृत-शिक्षया तु, मानसिक-शुद्धिर्भवति स्वयमेव ननु।
मनसा शुद्धा व्यक्तिर्, न पुनर्दुराचरति किमपि कदापि कुत्र।।24।।

संस्कृत की शिक्षा से तो मन की शुद्धि स्वयं ही निश्चित रूप से हो जाती है। फिर मन से शुद्ध हुआ व्यक्ति कहीं भी कभी कोई भी दुराचार नहीं करता है।

संस्कृत-विद्येवैका, सकल-विश्वोपकारिणी सर्वथा।
कदा शासन-नेतार, एतत् सत्यमवगमिष्यन्ति?।।25।।

एकमात्र संस्कृत-विद्या ही समस्त विश्व का सब प्रकार से उपकार करने वाली हैं। इस सत्य को शासनकर्त्ता नेता कब समझेंगे?

सन्तीमे संस्कृतस्य, शिक्षाया बहवो हिताभाः।
तस्मात् सुख-शक्ति-कृते, प्रार्थये महर्षि-मणे! त्वामधुना।।26।।

संस्कृत की शिक्षा के ये बहुत सारे लाभ हैं। अतः हे महर्षिमणि वाल्मीकि जी महाराज! मैं इस समय सुख-शान्ति के लिए आपसे प्रार्थना करता हूँ कि-

संस्कृतमनिवार्यतया, सर्वानपि शिक्षयितुं महामुने! त्वम्।
प्रेरयं शासक-वृन्दं, येन हि मनो न प्रदूष्येत लोकानाम्।।27।।

हे महामुनि जी! आप सभी को अनिवार्य रूप से संस्कृत सिखाने के लिये शासक-वृन्द को प्रेरित कीजिये, जिससे लोगों का मन प्रदूषितन हो।

स्व-योग-बलेन किं नहि, कर्त्तुं शक्नोति हे महर्षि-मणे!
किमस्ति तद्? यत् त्वमत्र, वाञ्छेः पुनश्च तन्नरि संसिध्येत्।।28।।

हे महर्षि-मणि जी! आप अपने योगबल से क्या नहीं कर सकते हो? वह क्या है? जिसे आप यहाँ चाहें और फिर वह सिद्ध न हो!

कुरु कृपां त्वमविलम्बं, रावण-राज्य-स्थानेऽधुना।
तिस्यं सकल-सुख-दीयि, राम-राज्यं दर्शय सर्वत्र रे!।।29।।

अजी! आप कृपा कीजिये और अब अविलम्ब ही रावण-राज्य के स्थान पर नित्य समस्त-सुख-दायक रामराज्य सर्वत्र दिखा दीजिये।

इदमेव विनिवेदये, पुनः पुनः प्रणिपत्य ते पदान्जयोः।
कुरुष्व मां न निराशं, महाकारुषिकोऽसि त्वं तु मुनिराज!।।30।।

यही मैं आपके चरण-कमलों में पुनः पुनः प्रणाम करके विशेष निवेदन करता हूँ। आप मुझको निराश मत करना। हे मुनिराज! आप तो महान कारुणिक हो।

नान्यद् याये स्व-कृते, साधयसे यदीदमेव प्रार्थितं मे।
तर्ह्यनेनाप्यहं भोः! परमानन्दमेवानुबोभविष्यामि।।31।।

अपने लिये मैं आपसे अन्य कोई याचना नहीं करता। यदि आप मेरी इस प्रार्थित बात को सिद्ध कर देते हो तो अजी! मैं इससे भी परमानन्द ही बहुत बहुत अनुभूत करूँगा।

किमधिकं विनिवेदयै?, सर्वं हार्दं त्वं मे वेत्सि।
अतोविरमाम्यत्रैव, प्रणमन् नारायणकाङ्करः।।

मैं अधिक विशेष निवेदन क्या करूँ? आप तो मेरे हृदय की सब बात को जानते हो। अतः मैं नारायणकाङ्कर आपको प्रणाम करता हुआ अब यहीं विराम ग्रहण करता हूँ।

राष्ट्रपति सम्मानित,
पीठाचार्य, संस्कृत प्रचार-प्रसार शोधपीठ,
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर